समझाया, तब शिष्य को प्रश्न हुआ। **पूछता है कि जिसे आपने ध्यान करने योग्यरूप से बतलाया है,..** महाराज! आपने ध्यान करनेयोग्य आत्मा कहा, वह कैसा है? यह प्रश्न है। समझ में आया? २१ वें श्लोक के ऊपर उपोद्घात है न ऊपर? यह आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है अर्थात्? लक्ष्य करनेयोग्य, ध्येय करनेयोग्य, ध्यान करनेयोग्य। इस जगत में हितार्थी को, मोक्षार्थी को अथवा सत्य के सुखार्थी को आत्मा ध्यान करनेयोग्य है—ऐसा आपने कहा था, वह आत्मा है कैसा? किसका ध्यान करना? वह क्या चीज़ है? **उस आत्मा का क्या स्वरूप है?** समझ में आया? और वह कैसा है? ऐसा शिष्य का प्रथम प्रश्न हुआ। यह उसका उत्तर दिया जाता है।

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः।।२१।।

आत्मा लोक और अलोक को देखनेवाला है। यह क्या सिद्ध किया? पहले ही यह सिद्ध किया कि आत्मा.. आत्मा करे, परन्तु उस आत्मा के ज्ञान की इतनी ताकत है कि लोक और अलोक को जाने। अर्थात् लोक और अलोक सिद्ध किये। लोक चौदह राजू लोक भी है और खाली अलोक है। जो है, वह सब। उसका यह एक ही आत्मा जाननेवाला साक्षात् है। उसमें इस आत्मा को आत्मा कहा जाता है। वह लोकालोक को

जाननेवाला है। यह अपनी सत्ता के अतिरिक्त दूसरी अनन्त सत्ता का स्वीकार है, है ऐसा, परन्तु उसकी सत्ता में अपना प्रवेश है या दूसरे की अनन्त सत्ता का अपने में प्रवेश है - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : इतनी सब बात कैसे निकली?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें से निकली।

मुमुक्षु : ऊपर लोकालोक में क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकालोक। लोकालोक की सत्ता है। उसका यह सत्तावान जाननेवाला है। बस! इतनी बात। इस लोकालोक की सत्ता में इस सत्ता का प्रवेश है नहीं और उस लोकालोक की सत्ता का कोई अंश आत्मा की सत्ता में नहीं है परन्तु उस लोकालोक की सत्ता को जाननेवाला यह एक ही आत्मा है। देखो! पहले से यह बात की है। इतना आत्मा, सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, ऐसा सिद्ध करते हैं। शशीभाई!

मुमुक्षु : अपवाद आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवाद किसका आया? कहाँ आया अपवाद।

मुमुक्षु : अनियत....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनियत, नियत कब है? वह सब जानता है, उसमें कहाँ प्रश्न है?

यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि आत्मा कैसा? ऐसा पूछते ही उसका उत्तर दिया कि आत्मा सब लोक और अलोक की अस्ति है, उसका स्वीकार ज्ञान करता है, ऐसी उसकी ताकत है, बस! उसका कुछ करे या उससे इसमें (कुछ हो), यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है परन्तु लोकालोक को जाननेवाला एक यह आत्मा, इतनी इसकी ताकत है। पहले यह सिद्ध किया। समझ में आया? अन्वयार्थ में यह मेल आता होगा इन्हें? भाई! टीका में ऐसा कहा न! सीधा यही कहा है। **लोकालोकविलोकनः.. जीवादिक..** पहला यही कहा है। इसलिए अन्वयार्थ में आता होगा नहीं? नहीं तो पहला स्वसंवेदन है। परन्तु ऐसा आत्मा-ऐसा सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर नहीं इसे, इसका ज्ञान इतना है, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ सिद्ध, इसका आत्मा जो कहते हैं, आत्मा। अर्थात् ज्ञान से परिपूर्ण स्वरूप अर्थात् लोक और अलोक को जाननेवाला जो तत्त्व। लोक को अलोक को बनानेवाला नहीं, लोक और अलोक में एक होवे, ऐसा नहीं और लोक तथा अलोक को जाने बिना रहे, ऐसा नहीं। समझ में आया?

वैसे तो आत्मा... आत्मा बहुत करते हैं। आत्मा करो। परन्तु ऐसा नहीं। प्रत्यक्ष जानने के योग्य तेरा स्वभाव है। एक राग का करना और पर का मिलना या पर से होना, उस पर के कारण से तेरा कुछ ज्ञान का होना, वह तेरे स्वरूप में नहीं है। लोकालोक है; इसलिए जानना होता है, ऐसा भी नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लोकालोक है, इसलिए तू जाननेवाला है, ऐसा भी नहीं है। उसका स्वभाव ही लोकालोक को जानने का स्वत: स्वभाव अपना आत्मा का है। एक आत्मा का इतना स्वभाव है। क्या समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : तो दूसरे का कब करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे कब, करता कब था? अज्ञानी मान्यता करे। सब जाननेवाला है। करनेवाला अपने पूर्ण स्वरूप का। समझ में आया? उस स्वसंवेदन का करनेवाला, यह कहते हैं। स्वसंवेदन में भी किसी का करण और पर की अपेक्षा न रखे, ऐसा तत्त्व है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अर्थ – आत्मा लोक और अलोक को देखने जाननेवाला,.. एक **अत्यन्त अनन्त सुख स्वभाववाला,..** देखो! दो बातें सिद्ध की। ज्ञान और आनन्द दो सिद्ध करना है न पहले तो? मूल तो। आहाहा! भगवान आत्मा गुरु ने जब इसे दूसरे को आत्मा को कहा कि भाई! आत्मा ऐसा है। चिन्तामणि रत्न जैसा। इसे एकाग्र होवे तो प्राप्त हो ऐसा है, ऐसा है। बहुत वर्णन किया न उस २० गाथा में? तब शिष्य को लगा कि, परन्तु है कैसा आत्मा? कि जिस आत्मा को हमें ध्यान करने को लक्ष्य में लेकर अन्दर वेदन करनेयोग्य है। वह आत्मा तो इतना है। लोकालोक के ज्ञान जितना है, लोकालोक के ज्ञान जितना है, लोकालोक के कारण ज्ञान जितना है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं जैन के अतिरिक्त होती नहीं। समझ में आया?

वस्तु कहो या आत्मा। उस आत्मा को जब ज्ञानस्वभाव कहो (तो) वह ज्ञानस्वभाव किसे न जाने? लोक और अलोक, वस्तु और वस्तु से खाली अलोक। वह भी एक वस्तु परन्तु खाली। पूरी चीज़। सब अमाप.. अमाप.. अमाप.. अमाप.. अलोक और लोक, उसकी अस्ति को ज्ञान की अस्ति में जाननेवाला आत्मा है। स्वयं जाननेवाला... जाननेवाला, यह आत्मा। ऐसे अनन्त आत्माएँ हैं, एक आत्मा नहीं। समझ में आया?

फिर था न अन्दर में? अत्यन्त सुखस्वभाव का। उसका अर्थ किया। अत्यन्त का अर्थ अनन्त सुख स्वभाववाला। समझ में आया? अनन्त सुखस्वभाव सौख्यवान है। अनन्त सौख्यवान-अनन्त सुखस्वभाव-ऐसा निकाला अन्दर में से। अनन्त सुखस्वरूप है। स्वयं ही बेहद आनन्दस्वरूप है। जिसका स्वभाव ही जहाँ ज्ञान है, उसकी हद बाँधी, उसकी हद की, कि लोकालोक को जाने। अब सुख में तो कुछ लोकालोक को जान-अजान की जरूरत नहीं। ज्ञान में तो बात की कि यह ज्ञान लोकालोक को जाने इतना और आनन्द अनन्त, आनन्द अत्यन्त, ऐसा। आनन्द अत्यन्त, कि जिस आनन्द का स्वभाव अमाप है परन्तु जिसका स्वभाव आनन्द है, उसे माप क्या? उसे प्रमाण क्या? उसे हद क्या? प्रमाण अर्थात् कि बस इतना, ऐसा क्या?

ऐसा यह आत्मा। इस आत्मा का, ऐसा आत्मा ज्ञान करके ध्यान करना, उसका नाम सच्चा आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? अनन्त सुखस्वभाववाला। वापस स्वभाववाला। यह सुखस्वरूप ही ऐसा है। अनन्त आनन्दमूर्ति नित्यानन्द प्रभु है। आत्मा नित्यानन्द है। नित्य आनन्दस्वरूप है। उसकी पर्याय में विकृतभाव से दुःखी होता है, वह तो दशा है, वस्तु में वह नहीं है। समझ में आया? नित्यानन्द प्रभु अनन्त आनन्द की सत्ता के स्वभाव को रखनेवाला तत्त्व है, उसे आत्मा कहते हैं। वह आनन्द पर से नहीं, वह आनन्द पर से नहीं, वह आनन्द लोकालोक को जानता है, इसलिए नहीं—ऐसा कहते हैं। उसका स्वभाव ही अनन्त आनन्दस्वरूप ही है, वह भगवान। आहाहा! समझ में आया? अनन्त सुखवाला, सुखस्वरूप आत्मा। अनन्त बेहद आनन्दवाला आत्मा, उसे आत्मा कहा जाता है।

शरीरप्रमाण,.. तीसरा। शरीरप्रमाण है। कोई कहे कि इतना ज्ञान और इतना आनन्द! ऐसा तत्त्व (होवे तो) उसका क्षेत्र कितना बड़ा होगा? समझ में आया? जिसे लोकालोक को जानने की सामर्थ्य और अनन्त हदवाला बेहद आनन्द है तो उसके क्षेत्र

की क्षेत्र व्यापकता कितनी होगी ? कि शरीरप्रमाण। इतना ज्ञान और इतना आनन्द रखता है, इसलिए ऐसे लोक में व्यापक हो जाता है, ऐसा नहीं है। उसे क्षेत्र की अमापता की आवश्यकता नहीं है। उसके भाव के अमापता की आवश्यकतावाला वह तत्त्व है। शशीभाई ! आहाहा !

शरीरप्रमाण। भाई ! स्वयं के कारण, हों ! शरीर के कारण नहीं। अपना स्वरूप ही शरीर जितना है, इतने प्रमाण में अपना स्वरूप ही इतने क्षेत्र में है। क्यों ? ध्यान करनेयोग्य आत्मा कहा न ? तो ध्यान करनेयोग्य वह अन्तर में ऐसे ध्यान करना है। अर्थात् उसका क्षेत्र ही इतने में है। शरीरप्रमाण अर्थात् इतने क्षेत्र में वहाँ एकाग्र होना है इसे, इसे ऐसे एकाग्र होना नहीं। समझ में आया ? शरीरप्रमाण। ओहो ! इतना ज्ञान और इतना आनन्द और शरीरप्रमाण ? कि, हाँ; शरीरप्रमाण ही उसका व्यापकपना है। असंख्यप्रदेशी भगवान शरीरप्रमाण चौड़ा है, इतने में है। क्षेत्र की अचिन्त्यता की आवश्यकता नहीं। उसके क्षेत्र में इतने में होने पर भी बेहद ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है, उसके स्वभाव का इतना सामर्थ्य है।

नित्य,.. है। क्षण-क्षण में बदल जाये अथवा जन्मे और मरण तक आत्मा रहे, ऐसा नहीं है। नित्य है। बौद्ध आदि मानते हैं न ? उनके सामने कहेंगे। **स्वसंवेदन से..** अब आया अन्तिम। ऐसा आत्मा अपने अन्तरज्ञान के वेदन द्वारा अर्थात् किसी दूसरे साधन बिना, ऐसा सिद्ध करना है। **स्वसंवेदन से..** अपने अन्तर में शरीरप्रमाण में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द स्वयं से अन्तर नित्य वस्तु ध्रुव कही, अब वेदन-अपने ज्ञान की पर्याय से वेदन करनेयोग्य है। उसका यह स्वकाल-काल कहा। वह स्ववेदन अपने ज्ञान से वेदन होने योग्य जीव है। उसका स्वरूप ही ऐसा है। उसे आत्मा कहते हैं। राग और निमित्त से ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

आत्मा आनन्द और ज्ञान का पिण्ड प्रभु शरीरप्रमाण होने पर भी नित्य है और स्वयं अन्तरज्ञान-वह ज्ञान स्वसंवेदन-स्व से ही अनुभव प्रत्यक्ष होने योग्य है। अपने ज्ञान द्वारा प्रतयक्ष अनुभव होने योग्य है। ऐसा ही उसका स्वरूप है। कोई कहे कि राग और निमित्त और संयोग और शरीर ठीक होवे तो ऐसा होवे तो आत्मा का वेदन हो सके—आत्मा ऐसा है ही नहीं। मोहनभाई !

मुमुक्षु : यह आत्मा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा (होता है), वहाँ तक विकल्प है, ऐसा नहीं। यह आत्मा अर्थात् विकल्परहित ऐसा वेदन अन्दर में जाये, वह आत्मा। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ तो आत्मा का ध्यान करने को कहा तब, कि वह आत्मा कैसा कि जिसका हम ध्यान करते हैं? और ध्यानवाले तो बहुत सब लोग कहते हैं, चारों ओर कहेंगे ध्यान करना, ध्यान करना। अन्य में भी बहुत कहते हैं न कि यह ध्यान करते हैं। वे योगी जंगल में ध्यान करते हैं, वे अमुक ध्यान करते हैं। किसका? कैसे स्वरूप का? वह स्वरूप क्या है, जाना है? वह जाने बिना ध्यान खरगोश के सींग (समान है)। खरगोश को सींग नहीं होते, उसका ज्ञान सच्चा नहीं होता। व्यर्थ निकले। समझ में आया? स्वसंवेदन से। समझ में आया? ऐसा कहने से अपना, ज्ञान का, प्रत्यक्ष... मन के, राग के अवलम्बन बिना वह सीधा स्वसंवेदन होने योग्य ऐसा उसका स्वरूप है।

मुमुक्षु : सीधा अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधा अर्थात् राग और कोई भी पक्ष रागादि था या कुछ उसे सहारा मिला है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्यान का फल ऐसा दिखाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ध्यान इसका करना, ऐसा कहते हैं। ऐसा आत्मा-उसका ध्यान करना। पहले से आत्मा कल्पना करे कि इस राग से लाभ होगा और यह तीन काल तथा तीन लोक का जाननेवाला मैं नहीं और पूर्ण नहीं.. ऐसा जो आत्मा जाने, उसे सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। व्यर्थ निकले खरगोश के सींग जैसा। ससला समझते हो? खरगोश।

मुमुक्षु : कृतकृत्य होने का हो, परन्तु सीधे का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधे का अर्थ कि राग का अवलम्बन नहीं, बिल्कुल सहज। ऐसा करूँ, ऐसी बुद्धि भी वहाँ नहीं, तथापि कर्ता हुए बिना स्वसंवेदन होता नहीं। समझ में आया?

यह वस्तु है न! ऐसा कहते हैं, पदार्थ है न! बेहद ज्ञान, बेहद आनन्द आदि दो को मुख्य लिया। इन आदि गुणों से कहा गया आत्मा स्वसंवेदन से और **कहे हुए गुणों से**

योगिजनों द्वारा.. ऐसा ज्ञान और आनन्दवाला आत्मा, ऐसे गुणों की पर्याय द्वारा **अच्छी तरह अनुभव में आया हुआ है।** लो, समझ में आया ? ऐसा उसका...

देखो ! यह इष्टोपदेश। यह इष्टोपदेश, जिस उपदेश में ऐसा कहने में आता है कि आत्मा ऐसा नहीं है अथवा स्वयं सर्वज्ञ वर्तमान में नहीं है, सर्व को जानने की ताकतवाला अनन्त आनन्द नहीं है, शरीर से आगे विशेष है और शरीरप्रमाण नहीं है, नित्य नहीं माने और वह स्वयं से वेदन में आता है, ऐसा न माने और पर से ज्ञात होता है, (ऐसा कहे) वह उपदेश इष्टोपदेश नहीं है। शशीभाई ! गजब बात, भाई !

ऐसे कहे हुए गुण अन्दर में है, उनकी पर्याय द्वारा स्वसंवेदन—दूसरे के अवलम्बन बिना स्वयं स्वयं से वेदन में आये, ज्ञेय हो सके और ज्ञाता हो सके। स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता हो सके, ऐसी उसकी शक्ति का सत्व है। उसके ज्ञेय होने के लिए और ज्ञाता होने के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता पड़े, ऐसा वह तत्त्व ही नहीं है–ऐसा कहते हैं। क्या कहा ? समझ में आया ? तू ऐसा है ही नहीं। आहाहा ! तू ऐसा है और ऐसा ही है – ऐसा सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा आत्मा देखा और वैसा कहा है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा आत्मा देखा और कहा और स्वयं जाना। वह आत्मा अपने ऐसे बेहद ज्ञान और बेहद आनन्द... बेहद ज्ञान की लोकालोक की प्रमाणता की। आनन्द में कुछ नहीं, आनन्द तो स्वयं अपना है। ज्ञानप्रमाण आनन्द है। ऐसा आनन्द का धाम गुणों द्वारा, अपने गुणों द्वारा–अपने गुणों द्वारा अर्थात् गुण की पर्याय द्वारा, उन गुण द्वारा गुणी अर्थात् उसकी पर्याय सीधी राग और विकल्प के आश्रय बिना एकदम अपने गुण द्वारा गुणी ज्ञात होता है। गुण द्वारा अर्थात् पर्याय द्वारा इसका अर्थ और पर्याय गुण–गुणी की एकता, गुण द्वारा गुणी ज्ञात होता है, ऐसा ही उसका स्वरूप है। समझ में आया ? यह प्रीतिभोज जीमाया जाता है। आहाहा ! यह तुम्हारे प्रीतिभोज होते हैं न ! देखो ! २० गाथा कही, बाद में यह २१ वीं यह ली है। आहाहा !

भगवान ! तू कैसा है ? उसकी ज्ञान की डोर भी ज्ञान में न बँधे, ऐसा है ऐसा ज्ञान जब तक निर्णय न करे, तब तक उसे अन्तर्मुख स्वतः झुकने की ताकत खिलती ही नहीं। समझ में आया ? कोई कहे कि परन्तु तब यह कैसे हमें होता नहीं ? परन्तु इसका अर्थ है कि कहीं इसे विकल्प के साधन से, विकल्प में प्रेम, मिठास, कुछ भी परचीज़ में मिठास

की लीनता बिना यह कार्य नहीं होता, उसका हेतु यह है। समझ में आया? चन्दुभाई! यह तो एकदम चैतन्य के रण में उतरने की पद्धति है।

भगवान आत्मा क्षेत्र से इतना, तथापि ज्ञान से—आनन्द से अमाप है। वह स्वयं नित्य और शरीरप्रमाण रहने पर भी, वह स्वयं अपने से ज्ञात हो, ऐसी ही उसकी जाति है। वह परजाति-रागादि परजाति विकल्प और शरीर, वाणी आदि वह परजाति, उसका तो इसमें (आत्मा में) अभाव है। ऐसे अभाव द्वारा ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ नहीं है, ऐसा सिद्ध करते हैं। उसमें भाव जो है—ऐसा कहा न? **गुणों से योगिजनों द्वारा..** जो इसमें भाव है (अर्थात्) ज्ञान है, आनन्द है, शान्ति है, स्वच्छता है, विभुता है, प्रभुता है—ऐसे अपने अनन्त गुण हैं, भाव है। उस भाव द्वारा ज्ञात होता है। यह भाव शब्द से यह गुण अर्थात् पर्याय। उस अपने भाव द्वारा ही भाववान ज्ञात हो, ऐसा वह तत्त्व है।

मुमुक्षु : निर्मल पर्याय होवे, उसके द्वारा ज्ञात होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निर्मल पर्याय के भाव द्वारा यह भाव ऐसा उसके द्वारा ही ज्ञात हो, ऐसा ही वह तत्त्व है। दूसरा ऐसा तत्त्व दूसरे प्रकार से है ही नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! कितने मन्दिर बनाने से यह समझ में आये? पहले से इनकार करते हैं। हमारे यह कहते हैं कि सब हो रहे, फिर कहो। तुम्हारे सबके हो गया है परन्तु इन्हें बाकी रह गया है। यह क्यों नहीं आये सवेरे? आहाहा!

शिष्य ने कहा, प्रभु! यह श्रद्धा उत्पन्न हुई। तब पूछा, इस आत्मा का स्वरूप कैसा है, वह जिसे हम लक्ष्य में लेंगे? वह कैसा स्वरूप है? वह ऐसा स्वरूप है। आहा! स्वयं ज्ञेय हो सके और स्वयं ज्ञाता, स्वयं ज्ञाता द्वारा ज्ञेय हो सके, ऐसा वह स्वरूप है।

मुमुक्षु : अनुभवी ऐसा कहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभवी नहीं, उसका स्वरूप ही ऐसा तेरा है, ऐसा कहते हैं। धर्मी कहते हैं कि परन्तु तुम्हारा स्वरूप ही ऐसा है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानचन्दजी! भाई! तेरी जाति ही इतनी और इतनी है। ऐसी है कि भगवान आत्मा पूर्णस्वरूप से भरा हुआ अन्तर में जहाँ एकाग्र होता है, उसका क्षेत्र इतना ही है परन्तु उस एकाग्रता में अपना भाव जो भरा हुआ है, उसके द्वारा ही एकाग्र होता है। उस भाव के द्वारा अर्थात् पर्याय के द्वारा। वह सीधी

अपनी पर्याय सीधी अर्थात् अन्दर विकल्प और राग और निमित्त कुछ भी था, इसलिए ऐसा हुआ, वह था तो यह भाव (हुआ), वह था तो यह (भाव हुआ), ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहाहा! बात तो बात है न परन्तु! ओहोहो!

भाई! तू इतना है न! इससे कम मानेगा तो वह हाथ में नहीं आयेगा। चन्दुभाई! इससे दूसरे प्रकार से कुछ भी यदि आत्मा को माना तो आत्मा का पता नहीं आयेगा। आहाहा! समझ में आया? ढिंढ़ोरा पीटकर इष्टोपदेश पूज्यपादस्वामी ने जगत के सामने प्रसिद्ध रखा है, यह कुछ गुप्त रखने की चीज़ नहीं है। अरे! भाईसाहब! वह हमारा व्यवहार.. व्यवहार.. व्यवहार.. नाश होता है। सुन न! उस व्यवहार द्वारा प्राप्त हो, ऐसा यह तत्त्व ही नहीं है, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! सुन तो सही। इतनी महिमा लक्ष्य में नहीं आवे, तब तक वीर्य अन्दर में नहीं झुकेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐ.. जैचन्दभाई! यह गजब, भाई! तब मैं यह मन्दिर बनाया बड़ा? मन्दिर और यह सब। ऐसा करो और वापस ऐसा कहो, दोनों का मेल नहीं खाता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : किसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को। भाई! वह शुभराग होवे, तब ऐसे निमित्त में लक्ष्य जाता है। वह वस्तु हो, परन्तु उसके द्वारा अन्दर की चैतन्य की प्राप्ति हो, यह वस्तुस्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

विशदार्थ – देखा? विशेष अर्थ न करके विशदार्थ किया है। विशद - अधिक स्पष्ट, ऐसा। आहाहा! यहाँ तो आठ वर्ष की बालिका हो या सौ वर्ष की वृद्धा हो, या आठ वर्ष का लड़का हो अथवा सौ वर्ष का अमलदार वृद्ध हो, यह आत्मा ऐसा सबका है। उसे शरीर और फरीर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **जीवादिक द्रव्यों से घिरे हुए आकाश को लोक..** अब लोकालोक की व्याख्या करते हैं। लोकालोक को जाननेवाला कहा न? कैसा लोक? कि जिसमें जीव आदि द्रव्य भरे हुए हैं। घिरे हुए अर्थात् भरे हुए हैं, उसे लोक कहते हैं। जिसमें छह द्रव्य हैं, उसे लोक कहते हैं। देखो! यह छह द्रव्य हैं, ऐसा सिद्ध किया। उसे लोक कहते हैं। लोक का वह जाननेवाला है। समझ में आया? है न अन्दर '**जीवाद्याकीर्णकाशं ततोऽन्यदलोकः**' टीका ठीक की है। समझ में

आया ? अब लोक और अलोक का जाननेवाला आत्मा (कहा) तो लोक अर्थात् क्या ? – कि लोक अर्थात् जिसमें चौदह ब्रह्माण्ड, चौदह राजू लोक में जीव और जड़ छह द्रव्य होते हैं, उसे लोक कहा जाता है। यह लोक छह द्रव्यों से भरा हुआ है। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश के प्रदेश। यहाँ ....है।

और उससे अन्य सिर्फ आकाश को अलोक कहते हैं। सिर्फ अर्थात् खाली, ऐसा। खाली (अर्थात्) यह जीव और जड़ जिसमें नहीं है। खाली भाग.. खाली भाग.. खाली भाग.. ऐसा ही अस्तित्व है। लोक का अस्तित्व इन सब द्रव्यों से भरा हुआ अस्तित्व है। अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी। अलोक का अस्तित्व अमाप और इन द्रव्यों का उसमें अभाव। अलोक का अस्तित्व क्षेत्र से अमाप और इन द्रव्यों का उसमें अभाव। इसलिए अलोक की व्याख्या की। समझ में आया ? यह लोक जिसमें चौदह ब्रह्माण्ड जीव आदि भरे हैं, उसे लोक कहते हैं। उससे खाली उसे अलोक (कहते हैं)।

उन दोनों को विशेषरूप से.. दोनों को विशेषरूप से-भेद पाड़कर, ऐसा। **उनके समस्त विशेषों में रहते हुए..** उसमें सब जितने भेद द्रव्य-गुण-पर्याय के सब यहाँ पड़े हैं। **जो जानने-देखनेवाला हैं,..** जो सबको जानने-देखनेवाला है। जितने विशेष जगत में पड़े हैं, अलोक में, आकाश में भी जितने उसके गुण और उसकी पर्यायों का सब जो विशेष भरा है और यहाँ भी जितने द्रव्य जीव—अनन्त आत्माएँ, परमाणु, उसका विशेष गुण-पर्याय सब। देखा ? वे कहते हैं कि सामान्य देखता है और विशेष नहीं देखता, कितने ही ऐसा कहते हैं। अरे ! भगवान ! तूने क्या किया ? भाई !

इसलिए दो शब्द प्रयोग किये। **उन दोनों को विशेषरूप से..** अर्थात् सबके भेद करके। लोक और अलोक इकट्ठा, ऐसा नहीं। लोक अलग, अलोक अलग और वापस उसमें रहनेवाले द्रव्यों के सब गुण-पर्यायें जो भिन्न-भिन्न हैं, एक-एक आत्मा भिन्न, रजकण-रजकण भिन्न, एक-एक के गुण-गुण भिन्न, उनकी पर्यायें-पर्यायें भिन्न। स्वाध्याय नहीं करते। अरे ! स्वाध्याय करे न शान्ति से... भाई ! समझे न ? और ऐसा का ऐसा विवाद करते हैं। अध्यात्म के शास्त्रों का अभ्यास नहीं होता। उन शास्त्रों के अभ्यास में व्यवहार की दृष्टि पोसा गयी है। अब उस दृष्टि से सब पढ़े तो इसे, बापू ! ठीक कैसे पड़े ? इसे वस्तु हाथ नहीं आवे। समझ में आया ? व्यवहार के कथन कितने आवें ! लो ! कितने साधन,

कितने साधन। ओहोहो! यहाँ कहते हैं कि साधन से प्रगट हो, ऐसा आत्मा है ही नहीं।

मुमुक्षु : परन्तु उसे कब व्यवहार साधन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निर्णय इससे हुआ, तब उसे व्यवहार (कहा), व्यवहार अर्थात् अभाव। इसमें अभाव, भाव से प्रगटा न हो, वह इसमें अभाव है। तब अभाव का ज्ञान हुआ कि दूसरी चीज़ है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो प्रमाण सिद्ध की बात है। प्रमाण.. प्रमाण यह है और ऐसा कहते हैं। आता है न जयधवल में? अपने नहीं कहा था एक? मुनियों को तो एक अपना प्रमाण, वही प्रत्यक्ष है। अपना प्रमाण, वही प्रमाण है, दूसरा प्रमाण नहीं। समझ में आया?

जो जानने-देखनेवाले हैं,.. यह देखो! अकेला जानने-देखनेवला नहीं। ऐसे लोक और अलोक में रहे हुए विशेष जितने प्रकार, जितने भेद (हैं, उन) सबको जानने-देखनेवाला है। एक-एक द्रव्य के अनन्त गुणों और भेदों को जाननेवाला, एक-एक गुण की एक-एक पर्याय ऐसी अनन्त पर्यायें एक समय में हैं, उन्हें यह जाननेवाला है। बदलनेवाला नहीं, करनेवाला नहीं और उनसे होनेवाला नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अरे! इसे अपने तत्त्व का माहात्म्य, माहात्म्य इसका कितना है, इसे ख्याल में नहीं आया। ऐसा कहे तो, नहीं.. नहीं.. नहीं। राग होवे तो होता है। तेरे माहात्म्य का घात हो जाता है, प्रभु! तू ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐ.. पोपटभाई! पैसा-वैसा होवे, कुछ साधन होवे, खाने-पीने का होवे, निरोगता होवे, कुछ हवा-पानी होवे, जंगल में होवे, निर्झर ऐसे पानी में बैठे होवे, जंगल में वृक्ष खुला हो, तब ध्यान हो सकता है। एकान्त हो, लोगों का कोलाहल न हो।

मुमुक्षु : शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा, (वह) सब व्यवहार की बातें हैं। अब तुझे कितनी कल्पना करनी हैं? आहाहा! समझ में आया? इन सबको जानने-देखनेवाला है। ये सब चीज़ें जो कही कि यह सुविधा और बुविधा, उसका साधन लेकर समझे, ऐसा यह नहीं है। वे सब हैं, ऐसा इसे ज्ञान में, जानने में-देखने में आवे, ऐसा यह है। समझ में आया?

ऐसा कहने से 'ज्ञानशून्यचैतन्यमात्रमात्मा' ज्ञान से शून्य सिर्फ चैतन्यमात्र ही आत्मा है,.. अकेला जाने नहीं, जाने नहीं, जानना नहीं। जानना तो दुःखदायक है, ऐसा कितने ही मानते हैं। **ऐसा सांख्यदर्शन..** का निषेध किया। जानना रह जाएगा? जानना तो उपाधि है। यहाँ जानना और वहाँ भी जानना? भाई! जानना तो इसका स्वरूप है और वह अपने में रहकर लोकालोक को जानता है। लोकालोक में जाकर, लोकालोकरूप होकर और लोकालोक है, इसलिए जानता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अपने में रहकर यह जाने और यह जानना उसका स्वरूप है। उसे निकाल डाले तो आत्मा नहीं रहेगा।

कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह जानना, ऐसा जानना छोड़ दो। यहाँ पाँच-पच्चीस घर के लोगों में जानने में रुक जाए तो कितनी उपाधि (है, तो) लोकालोक का ऐसा जानना (उसमें) कितनी उपाधि! अरे! सुन न! उपाधि जानने में होगी या उपाधि राग करता था उसमें होगी? आहाहा! ऐसा कि घर के दस लोग हों, पच्चीस लोग हैं, ऐसा पहिचानने में बाधा पड़े। फावाभाई! भानेज को पहिचाने नहीं, लो! यहाँ रहता था कितने दिनों से। इस लोकालोक को जानना, यह कितनी उपाधि!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब हो गये न हमारे। एक बार पूछा था, कहा इसका नाम क्या? मुझे खबर नहीं। भानेज इसका है न? एक की एक लड़की, उसका लड़का। यहाँ रहता था।

यह तो कहते हैं कि लोकालोक को जाननेवाला आत्मा है, तो भी उपाधि नहीं, इसका स्वभाव है। उस चीज़ को जानता नहीं, यह जाननेवाले को जानता है। आहाहा! जाननहार तत्त्व ही इतना है। लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान, उसके ज्ञान को जाने, ऐसा वह तत्त्व है। आहाहा! ऐसे आत्मा की इतनी चीज़ है और ऐसा है, यह बात इसे ख्याल में आयी नहीं। आहा! समझ में आया? आहाहा! यात्रा और भक्ति... लो! यह चैत्र पूर्णिमा कल है न? (लोग) यात्रा में कितने जाते हैं, लो! वे बेचारे यहाँ आवें, तब यहाँ कहते हैं कि यात्रा से धर्म नहीं होता। हाय..हाय..! शोर मचावें या नहीं बेचारे? दान के लिए पैसा कितना खर्च करते हैं! कितना पैसा खर्च करते हैं! प्रतिदिन यहाँ पैसा आता है। बारह महीने

में कितना पैसा आता है ! और यहाँ कहते हैं कि इस पैसे के दान से धर्म नहीं होता, हों ! ओ..य.. ! पैसा तो जड़ है और उसमें राग की मन्दता तूने की हो तो वह पुण्य है और वह पुण्य कुछ आत्मा के स्व-संवेदन करने में बिल्कुल मदद नहीं करता। यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा ! ऐ.. पोपटभाई ! इसने आत्मा कैसा है, यह सुना नहीं और बातें करे आत्मा ऐसा। अरे ! सुन रे ! सुन ! आहाहा ! भगवान सर्वज्ञ ने आत्मा को ऐसा देखा और ऐसा वह है, ऐसा तेरे ख्याल में आवे तो आत्मा का ध्यान यथार्थ हो सकता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....सबको होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चीज़ है, देखे वह यह है, बस !

ज्ञान से शून्य... यह तो ज्ञानस्वरूप है न ! वे कहें, जानना उपाधि है। अरे ! सुन ! सुन ! जानना तो स्वभाव है। अनन्त लोकालोक के विशेषों को भेद पाड़कर जाने, वह तो निरुपाधि इसके ज्ञान का स्वभाव है। यह अनन्त जानना, वह उपाधि नहीं है, इसका निरुपाधि स्वभाव है। आहाहा ! ऐ... शशीभाई ! लोकालोक को जानना अर्थात् कोई कहे, ओहोहो ! इसे कितना याद रखना होगा। यहाँ याद की कहाँ बात है ? इसका स्वभाव ही ऐसा है। अपने में रहकर लोकालोक के प्रति लक्ष्य किये बिना अपने ज्ञान की जहाँ विकास शक्ति ही इतनी हो गयी है। इतनी ही इसकी शक्ति का सत्व यह है कि निरुपाधिरूप से लोकालोक को जाने, यह उपाधि है नहीं। अर्थात् कि यह तो गुण है। निरुपाधि अर्थात् यह तो इसका गुण है। इसके ज्ञानगुण का गुण है। ज्ञानगुण का गुण है कि जानना सब। यह जानना अधिक है, इसलिए उपाधि हो गयी, इसे आत्मा के ज्ञानगुण का सामर्थ्य कितना है, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

तथा 'बुद्धयादिगुणोज्झितः पुमान्'.. योगदर्शन कहता है। **बुद्धि सुख-दुःखादि गुणों से रहित पुरुष है, ऐसा योगदर्शन खण्डित हुआ समझना चाहिए।** योगदर्शन में कहते हैं कि बुद्धि और सुख तथा दुःख जिसमें नहीं होते, उसे आत्मा कहना। यह मिथ्या बात है। ज्ञान और आनन्द दोनों होते हैं, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा ! देखो ! यह आत्मा.. आत्मा.. तो बात बहुत सब बोलते हैं और अब तो फिर बहुत चला है। अपने यहाँ तीस वर्ष हो गये। यहाँ से पुस्तकें इतनी प्रसिद्ध हुई हैं और लोग अब आत्मा की बातें करने लगे हैं।

अन्यमति में भी, वहाँ आत्मा.. आत्मा.. करते हैं, लाओ अब अपने आत्मा कहें। परन्तु आत्मा कैसा और कौन? यह समझे बिना आत्मा (करे)। क्या आत्मा?

मुमुक्षु : भगवान जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भगवान तो जानते हैं, परन्तु तू कौन है?

मुमुक्षु : यह भी भगवान जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पूँजी की कितनी ताकत है, उसकी इसे खबर नहीं होती और इस बेखबर को आत्मा हाथ आता होगा? कोई चीज़ कहाँ है और कहाँ पड़ी है और कितनी है? यह मुझे खबर नहीं। वह तो ऐसा का ऐसा हाथ आवे। धूल में भी हाथ नहीं आवे वहाँ। इसी प्रकार यह चीज़ कहाँ है? इतने क्षेत्र में। कैसी है और कितने गुणवाली और कैसे स्वरूप से है? खबर नहीं। जमुभाई! आँखें बन्द करके...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम इसमें क्या हुआ? नाम का भाव है, वह तो ख्याल नहीं। आहाहा!

कितने ही कहते हैं कि बुद्धि और सुख-दुःख आदि पर्याय है न? दुःख विकृत, उससे रहित है। नहीं, सुख की पर्याय और सुख का गुण और ज्ञान के गुण की पर्यायसहित तत्त्व है। समझ में आया? **ऐसा योगदर्शन खण्डित हुआ समझना चाहिए।**

और बोद्धों का 'नैरात्म्यवाद'.. अर्थात् आत्मा बिना का वाद। **भी खण्डित हो गया।** आत्मा नहीं है, ऐसा बौद्ध कहते हैं। आत्मा नहीं। आत्मा पूरा नित्य है। नहीं, नहीं। वह आत्मा त्रिकाल है या नहीं, यह हम कुछ नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। बौद्ध पूरा बड़ा है न? अभी तो बहुत पक्ष है नहीं? यही है न बहुत, नहीं? चीन में... चीन में नहीं, बड़े देश में बौद्ध है, ख्रिस्ती से बड़ा यह है, नहीं? बौद्ध अभी हैं। क्रिश्चियन की अपेक्षा बौद्ध (वर्ग) बड़ा है। बौद्ध को पूछो कि आत्मा नित्य है या नहीं? वह कुछ नहीं।

आत्मा त्रिकाल है, त्रिकाल ज्ञान और आनन्दवाला त्रिकाल तत्त्व है, ऐसा नहीं माननेवाले बौद्धों का निषेध (हुआ)। बौद्ध अर्थात् यह तो न्याय दिया, परन्तु इस प्रकार से वे आत्मा को जानते नहीं।

फिर बतलाया गया है कि 'वह आत्मा सौख्यवान् अनंत सुखस्वभाववाला है'। भगवान अनन्त आनन्दवाला है, अनन्त आनन्दस्वरूप है। जिसमें अनन्त आनन्द का ढाला पड़ा है। समझ में आया? यह मोहनथाल का चोकोर टुकड़ा नहीं करते? उसे क्या कहते हैं? लोहे की क्या कहलाती है? चोकड़ी-चोकड़ी, चौकी-चौकी, फिर ऐसा करते हैं न? मोहनथाल और मैसूर और ऐसे झरझरता करके डाले। इसे खबर होगी अधिक।

मुमुक्षु : मावा डालकर करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मावा डालकर। देखो! यह अधिक डाला। वापिस मावा डालकर यह ऐसे चोकोर टुकड़ा करते हैं। अभी तो कि लूँ या न लूँ ऐसे अन्दर से... और अभी ताजा ऐसे छुरी मारे न? छुरी से चोकोर टुकड़ा करे। पहला तो स्वयं ही उठावे। यह तो कहते हैं, बापू! बाहर की बात, भाई! यह तेरा आत्मा असंख्य प्रदेशी चौकी है। उसमें अनन्त आनन्द भरा है, भाई! उसे एकाग्रता के भाव से उसे अनुभव करे, यह तेरी ताकत है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इन सब लड़कों का पढ़ने-बढ़ने का कहाँ जाता होगा? विपिन! यह पढ़ने-बढ़ने में कहीं नहीं आया, हों! इसकी कीमत भी नहीं आयी, नहीं? कहो, बोर्डिंग में पढ़ाते हैं। मलूकचन्दभाई! आहाहा! भाई! करनेयोग्य तो यह है, बापू! यह बीच में सब भले हो। आहाहा!

असंख्यात प्रदेशी चौकी है ऐसे, अन्दर इतने में ही पूरा है। आनन्द के दल से भरपूर है। ऐसे आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. अतीन्द्रिय आनन्द, सिद्ध का आनन्द, ऐसा तेरा स्वरूप ही है। दुःख की गन्ध नहीं, राग का स्पर्श नहीं, शरीर का संयोग जिसमें है ही नहीं। संयोगीभाव, विकल्प है, वह संयोगीभाव है। स्वभावभाव नहीं। संयोगभाव से स्वभाव जागृत हो ऐसा वह नहीं है, ऐसा वह निर्बल नहीं है। आहाहा! वह स्वभाव ही इतना ऐसा है। अनन्त-अनन्त बेहद आनन्द, बेहद आनन्द। दुःख की पर्याय तो एक समय की अल्प है। वह तो आनन्द जिसका स्वतः-स्वतः स्वभाव, स्वतः स्वभाव ऐसा बेहद आनन्दस्वरूप आत्मा है।

ऐसा कहने से सांख्य और योगदर्शन खण्डित हो गया। सांख्य कहता है या नहीं (कि) यह आनन्द नहीं होता। सबको सुख-दुःख भोगने का नहीं होता। ऐसा

(कहता है वह) झूठ बात है। **फिर कहा गया कि वह 'तनुमात्रः' 'अपने द्वारा ग्रहण किये गये..** देखो! भाषा कैसी ली है! **'अपने द्वारा ग्रहण किये गये शरीर-परिमाणवाला है'।** उसकी योग्यता प्रमाण शरीर उसने ग्रहण किया है अर्थात् निमित्तरूप से आया है, ऐसा कहते हैं। अपनी योग्यता थी और उस प्रमाण शरीर वहाँ आया है। इतने शरीर प्रमाण स्वयं है। भाषा देखो। आहाहा! **'शरीरपरिमाणः'** ऐसा है न? संस्कृत में है। **'कीदशस्तनुमात्रः स्वोपात्त-शरीरपरिमाणः।' 'स्वोपात्त'** अर्थात् क्या, समझ में आया? - कि इसने ग्रहण किया है, इसलिए इस समय इसके शरीरप्रमाण रहने की योग्यता में रहा है। ऐसा वह शरीर। तथापि उस शरीर से भिन्न है। शरीरप्रमाण ऐसा कहना है न? शरीरप्रमाण शब्द है सही न? समझ में आया?

'तनुमात्रः' है न? तनुमात्र शब्द है न मूल में? इसलिए तनुमात्र की व्याख्या की। कौन सा तन? वापस ऐसा। कौन सा तन? कि जो यह ग्रहण करने में अर्थात् यहाँ जानने में यह चीज़ यहाँ जो है, वह तन। उस तन प्रमाण भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! अरे! उसका घर देखा तो नहीं इसने परन्तु घर को सुना नहीं कि तेरा कैसा घर है? ऐसे पाँच लाख का घर बनावे तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। ऐसे देखा ही करे... देखने बुलावे। चलो.. चलो.. चलो.. चलो देखने। कैसा घर हुआ है। वास्तु करना है, वैशाख शुक्ल तीज को वास्तु करना है, कहते हैं। पहले वास्तु नहीं किया था? वैशाख शुक्ल वह कुछ दूज थी। उन खीमचन्द फोटोग्राफी। फोटोग्राफी नहीं? साठ हजार का मकान तब (संवत्) १९८९ के वर्ष। कितने वर्ष हो गये? ३३। फोटोग्राफर थे न खीमचन्द फोटोग्राफी। साठ हजार का मकान बनाया। तब साठ हजार का अर्थात्? कितने वर्ष बदल गये। अब अभी तो रुपया हो गया तीन आने का। साठ हजार का मकान! आहाहा! दीवान को बुलाया था, जूनागढ़ के दीवान को। परिचित थे न? पहले बात हो गयी थी। एक-दो बार व्याख्यान में आये थे फिर कहा भाई! इन महाराज का देखो! तो कितने लोग आते हैं यहाँ! तीन-तीन हजार लोग! सब खबर है। मैं आया हूँ व्याख्यान में। सब योग परन्तु यह मुझे सही अवसर पर व्यवधान आया। मुझे यह बराबर मकान का वास्तु करना है। ऐई! एक ज्योतिषी ने कहा है कि चौरासी वर्ष का आयुष्य है। इसलिए ऐसा हुआ। वहाँ वे देखने गये। ऐसे घूमते-घूमते ऐसे-ऐसे देखते हैं... मुझे कुछ होता है। एकदम..

मुमुक्षु : एक-दो डॉक्टर आये, इंजैक्शन दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु देने से क्या भला हुआ उसका? कटी हुई उम्र कि ४८। बदल गया चौगड़ा। ऐसे चौरासी वर्ष का आयुष्य है, बात सत्य है। महाराज आये हैं न? आहाहा! तीन-तीन हजार लोग तब तो भोजनशाल राजकोट। क्या कहलाता है? दशाश्रमाली का बण्डा। तीन-तीन हजार लोग। ऐसे हकड़े ठाठ... मोटरें सुधरे हुए की भरे, घण्टे-घण्टे पहले! (संवत्) १९८९ के साल का चातुर्मास। अरे! इन महाराज का योग है। सब खबर है मुझे। महाराज का योग.. फिर से नहीं आयेगा, परन्तु अब मुझे यह हुआ, क्या करना? ज्योतिषी ने कहा है, फिर होगा, चौरासी वर्ष है। वहाँ ४८ में निपट गया। तब हम बाहर थे। वे विनयचन्द, वे मोरबीवाले नहीं? उसके सामने। उसमें ऐसे निकाला जुलूस-श्मशानयात्रा। परन्तु गृहस्थ व्यक्ति था न, इसलिए ऊपर-मुर्दे पर बहुत ऊँची शाख एकदम हुआ। पैसेवाला व्यक्ति नदी के उस किनारे से ऐसे साटम दिखायी दे। ओहो! कौन है यह? मुर्दा और लोग, अनेक लोग। कौन मर गया? कौन है? उसमें मौके से यह गुलाबचन्द पारिख थे न? भाई! यह... दादा। वे जलाते थे वहाँ आये, मेरे पास। यह खीमचन्दभाई गुजर गये। लोग बहुत, ऊँचे में ऊँची अर्थी पर साटन डाली हुई। ऐसी अर्थी प्रमाण, हों! धूल-धाणी और वाहपाणी, क्या है परन्तु इसमें? वहाँ नजदीक है न, ऐसे। वहाँ जलाते थे। वहाँ भाई आये गुलाबचन्द! आहाहा! यह दशा, कहा देखो न संसार की। अभी बाद में करूँगा, हो गया बाद का पिछवाड़ा, भव बदल गया, भव बदल गया। आहाहा!

कहते हैं कि शरीर ग्राह है, तदप्रमाण तेरा आत्मा अभी है, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह शरीर छूटे तो इस शरीरप्रमाण आत्मा तेरा इतना रहेगा, अवगाहन इतना है, अवगाहन इतना है, ऐसा कहते हैं।

ऐसा कहने से जो लोग कहते हैं कि 'आत्मा व्यापक है' अथवा 'आत्मा वटकणिका मात्र है'.. वटकणिका अर्थात् वट के बीज जैसा, ऐसा कहते हैं न कितने ही? वट का बीज जैसा। यह.. आत्मा यह... ऐसा कहते हैं। वटकणिका है न? **उनका खण्डन हो गया। फिर वह आत्मा 'निरत्ययः' 'द्रव्यरूप से नित्य है'..** द्रव्य से तो कायम (रहता है) शरीर भले पलटो, राग-द्वेष पलटो, अन्दर पलटा मारो अनन्त, परन्तु वह वस्तुरूप से तो त्रिकाल नित्य है, ऐसा का ऐसा। समझ में आया? साथ में शरीर के

रजकण अनेक पलटो, देह पलटो, कर्म पलटो, पुण्य-पाप के भाव अनेक पलटो, पलटो मार, मार पलटो। वस्तु-आत्मा तो नित्य त्रिकाल है। आहाहा! **ऐसा कहने से, जो चार्वाक यह कहता था कि 'गर्भ से लगाकर मरणपर्यन्त ही जीव रहता है,' उसका खण्डन हो गया।** लो, समझ में आया? अब स्वसंवेदन की व्याख्या। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)